आदिवासी जीवन और वनवासी कल्याण आश्रम

कमल नयन चौबे

भारत की जनजातियाँ (आदिवासी) एक समरूप इकाई नहीं हैं। उनकी विविधता वनों पर निर्भरता, आधुनिकता से जुड़ाव, बाहरी संगठनों के प्रभाव, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता इत्यादि कई आयामों में व्यक्त होती है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों[1] के अधिकारों के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं।[2] यह भी सच है कि केंद्र और कई राज्यों की सरकारों ने आदिवासियों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए कई कार्यक्रम चलाए हैं।

---

[*] यह शोध आलेख भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद द्वारा 'अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम और आत्म निर्भर समुदायों की चाह : पेसा और एफ़आरए के विशेष संदर्भ में अध्ययन' विषय पर शोध के लिए स्वीकृत प्रोजेक्ट के अंतर्गत किये गये अध्ययन का भाग है.

[1] अमूमन अनुसूचित जनजाति और आदिवासी शब्द का पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है, किंतु कई ऐसे समुदाय भी हैं जो ख़ुद आदिवासी होने का दावा करते हैं लेकिन वे संविधान की अनुसूचित जनजाति श्रेणी का भाग नहीं हैं. इस आलेख में अनुसूचित जनजाति और आदिवासी शब्दों का प्रयोग समानार्थक शब्द के रूप में किया गया है. जहाँ अनुसूचित जनजाति से इतर ख़ुद को आदिवासी होने का दावा करने वाले समुदाय का ज़िक्र है, वहाँ इसका अलग से उल्लेख किया गया है.

[2] संविधान में अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा में आठ प्रतिशत सीटें आरक्षित की गयी हैं. विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं में, वहाँ की जनसंख्या में उनकी हिस्सेदारी के अनुपात में सीटों को आरक्षित करने की व्यवस्था है (अनुच्छेद 334). इन्हें सरकारी नौकरियों

इनकी सफलताओं और विफलताओं पर काफ़ी अध्ययन होते रहे हैं। कई ऐसे ग़ैर-सरकारी संगठन भी हैं, जिन्होंने आदिवासी क्षेत्रों में काफ़ी काम किया है, और अपनी समझ के अनुसार आदिवासियों के जीवन को बेहतर बनाने की कोशिश की। इनमें कई गाँधीवादी और वामपंथी विचारों से प्रभावित संगठन हैं, जिन्होंने लगातार आदिवासी क्षेत्रों में जागरूकता लाने का काम किया है। इस संदर्भ में माओवादियों ने भी उल्लेखनीय काम किया है, किंतु मैं उनके हिंसक रास्ते को अनुचित मानता हूँ। कुछ ऐसे संगठन भी हैं, जो मुख्य रूप से आदिवासियों के सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन को बेहतर बनाते हैं, और इसके माध्यम से अपने राजनीतिक लक्ष्यों को हासिल करने का प्रयास करते हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख का लक्ष्य आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले संगठनों की इस तीसरी श्रेणी में आने वाले सर्वप्रमुख संगठन अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम के कार्यों का आलोचनात्मक अध्ययन करना है। इस शोध-आलेख में यह विश्लेषण किया गया है कि आदिवासी समूहों की अपने स्वायत्त जीवन-शैली को बढ़ावा देने, वन-संसाधनों पर उनके हक़ को सुनिश्चित करने के संदर्भ में आश्रम की नीतियों और कार्यों की क्या भूमिका रही है? वामपंथी रुझान रखने वाले संगठनों की तुलना में आश्रम का दृष्टिकोण और कार्य किस तरह अलग रहा है? इस संदर्भ में विशेष रूप से आश्रम की स्थापना और वनवासी समूहों के अधिकारों के संदर्भ में इसके कार्यों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। साथ ही, इसे वामपंथी विचारों को स्वीकार करने वाले एक अन्य संगठन अखिल भारतीय वन जन श्रमजीवी यूनियन के संदर्भ में भी इसे समझने का प्रयास किया गया है।

शोध-आलेख के पहले भाग में आश्रम की स्थापना की परिस्थितियों और इसके बुनियादी लक्ष्यों के बारे में बताया गया है। दूसरे भाग में आदिवासियों की हित रक्षा से संबंधित इसके कार्यों का वर्णन है। इसमें विशेष रूप से पेसा,[3] वन अधिकार क़ानून[4] आदि क़ानून के संबंध में इनके कार्यों का वर्णन किया गया है। शोध-आलेख के तीसरे भाग में अखिल भारतीय वन जन श्रमजीवी यूनियन के गठन और इसके मुख्य लक्ष्यों और रणनीति का विश्लेषण किया गया है, और इस संदर्भ में विशेष रूप से पेसा और वन अधिकार क़ानून के संदर्भ में इनके कार्यों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। चौथे भाग में ग्राम्शी द्वारा नागरिक समाज के संगठनों की भूमिका के संदर्भ में अभिव्यक्त विचारों को आधार बनाते

में आरक्षण देने की व्यवस्था की गयी है (अनुच्छेद 335) साथ ही, संविधान में छठी और पाँचवीं अनुसूची के माध्यम से क्रमशः उत्तर-पूर्व के राज्यों और शेष देश के आदिवासी बहुल क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान किया गया है. देखें, *भारत का संविधान* (2008).

[3] संविधान में अनुसूचित जनजाति से संबंधित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए पाँचवीं अनुसूची और छठी अनुसूची की व्यवस्था की गयी है. छठी अनुसूची (अनुच्छेद 244 (2)) में मुख्य रूप से उत्तर-पूर्व के राज्यों के आदिवासी क्षेत्र आते हैं, वहीं पाँचवीं अनुसूची (अनुच्छेद 244 (1)) में देश के अन्य भागों के आदिवासी क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है. यहाँ यह याद रखने की आवश्यकता है कि देश के सभी आदिवासी समूह संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 'अनुसूचित जनजाति' की श्रेणी का भाग नहीं हैं, और देश में आदिवासियों के निवास वाले कई ऐसे क्षेत्र हैं, जो पाँचवीं या छठी किसी भी अनुसूची का हिस्सा नहीं है. इसीलिए देश के कई समूह जहाँ ख़ुद को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में सम्मिलित करने के लिए आंदोलन करते रहे हैं, वहीं कई क्षेत्रों में यह माँग भी की जाती रही है कि उन्हें पाँचवीं अनुसूची में सम्मिलित किया जाए. पेसा क़ानून पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में पंचायती राज के विस्तार से संबंधित है. यह क़ानून एक लम्बे संघर्ष के बाद पारित हुआ था और इसकी ख़ासियत यह है कि पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में आदिवासियों को कई महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान करता है। इस संदर्भ में विस्तार से जानकारी के लिए देखें, कमल नयन चौबे (2015); (2016); नंदिनी सुंदर (2009); पेसा क़ानून बनने की प्रक्रिया और इसके विभिन्न प्रावधानों और इसके लागू होने संबंधी अनुभवों के आलोचनात्मक समझ के लिए देखें, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (1996); कमल नयन चौबे (2013 क; 2014; 2015 क; 2015 ख); बी. डी. शर्मा (2004); अजय दाण्डेकर और चित्रांगदा चौधरी (2010).

[4] वन अधिकार क़ानून का पूरा शीर्षक है : अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकार मान्यता) अधिनियम (2007) इसमें अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारम्परिक वन निवासियों को वन भूमि पर व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकार प्रदान किया गया है. इस क़ानून के प्रावधानों के मुताबिक़ यदि कोई अनुसूचति जनजाति का परिवार 13 दिसम्बर, 2005 के पहले किसी वन भूमि पर रहा था, तो उसे उसके क़ब्ज़े वाले चार हेक्टेयर भूमि पर निजी सम्पत्ति अधिकार को क़ानूनी मान्यता देने का प्रावधान किया गया. हालाँकि ग़ैर-अनुसूचित जनजाति के लोगों या अन्य पारम्परिक वन निवासियों को यह साबित करना होता है कि वे एक ही स्थान पर 13 दिसम्बर, 2005 से पहले तीन पीढ़ियों और 75 वर्षों से रह रहे हैं. इसके अलावा, यह क़ानून अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी समूहों को वन संसाधनों पर सामुदायिक अधिकार भी देता है. इसका अर्थ है कि उन्हें वनों से वनोपज लेने, वनों के प्रबंधन में भागीदारी करने आदि का अधिकार दिया गया है. वन अधिकार

हुए भाग में वनवासी कल्याण आश्रण और वन जन श्रमजीवी यूनियन की नीतियों और कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। आलेख के आख़िरी भाग में इसका निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

I

वनवासी कल्याण आश्रम : ईसाई मिशनरियों के बढ़ते प्रभाव की प्रतिक्रिया

वनवासी कल्याण आश्रम के बारे में सबसे बुनियादी बात यह है कि यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आदिवासियों के बीच काम करने वाली शाखा है।[5] यहाँ दो तथ्यों को याद रखने की आवश्यकता है : पहला, संघ आदिवासी या अनुसूचित जनजाति शब्द से ज़्यादा वनवासी शब्द को प्राथमिकता देता है। संघ और आश्रम से जुड़े लोगों का यह मानना है कि आदिवासी शब्द जंगलों और उसके आस-पास रहने वाले समुदायों तथा हिंदू धर्म के बीच पृथकता को दर्शाता है। वहीं वनवासी शब्द यह बताता है कि ये समुदाय हिंदू धर्म का ही हिस्सा हैं और ये वनों या उसके आस-पास के क्षेत्रों में रहते हैं। इसीलिए, आश्रम ने अपने मूल-वाक्य के रूप में यह नारा स्वीकार किया है— 'तू और मैं एक रक्त'। इस शब्द के माध्यम से वे वनवासी लोगों से अपनी एकता दर्शाते हैं। बहरहाल, इस आलेख में मुख्य रूप से आदिवासी शब्द का ही प्रयोग किया है। सिर्फ़ आश्रम के दस्तावेजों को उद्धृत करते समय ही वनवासी शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरा, आश्रम अखिल भारतीय संगठन होने का दावा करता है, लेकिन कई स्थानों पर यह अन्य ग़ैर-सरकारी संगठनों या संघ की विचारधारा मानने वाले संगठनों के माध्यम से काम करता है।

वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना दिसम्बर, 1952 में वर्तमान छत्तीसगढ़ के जशपुर ज़िले में हुई थी। इसकी स्थापना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रमाकांत केशव देशपाण्डे द्वारा की गयी थी[6] जिसमें कांग्रेस के दक्षिणपंथी रुझान वाले नेताओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में मध्य प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ला का उल्लेख किया जा सकता है जो मानते थे कि आदिवासियों के बीच ईसाई मिशरियों के काम के कारण धर्मांतरण काफ़ी बढ़ा है, और इससे पृथकतावाद का ख़तरा भी पैदा हुआ है। रविशंकर शुक्ल ने प्रसिद्ध गाँधीवादी नेता ए.वी. ठक्कर से इस समस्या से उबरने के लिए सुझाव माँगा। ठक्कर लम्बे समय से आदिवासियों के बीच में काम करते रहे थे।[7] ठक्कर ने

क़ानून के बनने की प्रक्रिया इसके विभिन्न प्रावधानों और अनुभवों की आलोचनात्मक समझ के लिए देखें, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2007); कमल नयन चौबे (2013 क; 2013 ख; 2014; 2015 ग); मधु सरीन (2014).

[5] वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 36 ऐसे संगठन हैं जिन्हें पूर्ण आनुषंगिक संगठन का दर्जा दिया गया है. इसके अलावा, सौ से ज़्यादा ऐसे अन्य संगठन हैं जो इन संगठनों या आरएसएस से जुड़कर काम करते हैं, लेकिन इन्हें आनुषंगिक या सम्बद्ध संगठन का दर्जा नहीं दिया गया है. इन 36 संगठनों में विद्यार्थी, अधिवक्ता-न्यायपालिका, सार्वजनिक स्वास्थ्य, किसान-खेती, सामाजिक सेवा, सामाजिक एकता, साहित्य इत्यादि जैसे सामाजिक जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में काम करने वाले संगठन हैं. इन सभी संगठनों में संघ के कुछ प्रचारक कार्यरत रहते हैं, जिन्हें संघ का केंद्रीय नेतृत्व सुचारु रूप से इनका काम चलाने और केंद्रीय संगठन से इनका प्रभावकारी संबंध क़ायम रखने के लिए नियुक्त करता है। ऐसे संगठनों के प्रमुख उस क्षेत्र से जुड़ा व्यक्ति होता है। किंतु उसके काम में संगठन मंत्री का प्रभाव सबसे ज़्यादा होता है। अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम आदिवासी कल्याण का काम देखने वाला संगठन है। देखें, वॉल्टर के. एंडरसन और श्रीधर डी. दामले (2018) : ग; 258, 59.

[6] सूर्य नारायण सक्सेना (2004) : 61; इसके संस्थापक रमाकांत देशपाण्डे का जन्म 26 दिसम्बर, 1913 को अमरावती में हुआ था। इनके पिता केशवराव देशपाण्डे एक सरकारी कर्मचारी थे. रमाकांत सहित केशवराव देशपाण्डे के चार पुत्र थे और इन सबने क़ानून की पढ़ाई की थी. मुरली देवरस इनके ममेरे भाई थे, जो संघ के तीसरे सरसंघचालक बने. जब रमाकांत देशपाण्डे ने नागपुर की यात्रा की तो उन्होंने वहाँ लाठी चलाने के सत्र में भाग लिया, उनका परिचय डॉ. हेडगेवार से कराया गया और वे स्वयंसेवक बन गये. बी.ए. और क़ानून की डिग्री लेने के बाद देशपाण्डे रामटेक में अपने चाचा के साथ वकील के रूप में काम करने लगें. ये रामटेक में संघ के कार्यवाह या नेता भी बन गये. उन दिनों गोलवलकर भी रामटेक में रहते थे. उनके पास एक पुस्तकालय था, जिसमें देशपाण्डे अकसर जाया करते थे. बताया जाता है कि इस तरह उनके जीवन की धारा में आदरणीय गुरु जी का जीवन मिल गया और बाला साहेब के राष्ट्रीय सेवा के जीवन की शुरुआत हुई। देखें, के.डी. सप्रे (1999) : 11.

[7] ठक्कर के कार्यों के बारे में जानकारी के लिए देखें, सागर तिवारी (2017).

अपने कार्यकर्त्ताओं के लिए तैयार किये गये आंतरिक परचे में इस संगठन ने संघ से अपने जुड़ाव पर बल दिया। इसकी घोषित नीति यह है कि सरकारी आर्थिक सहायता पर निर्भर होने से स्वैच्छिक काम करने की भावना दुर्बल हो जाती है। साथ ही, इससे लोगों को भर्ती करने या काम के चयन पर भी पाबंदी लगती है। इसीलिए दरअसल इसीलिए 'लोगों से' पैसा एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। स्थानीय स्तर पर व्यापारी इसकी आर्थिक सहायता के मुख्य स्रोत हैं। वहीं अनिवासी भारतीयों के अमेरिका स्थित इंडिया डिवेलपमेंट रिलीफ़ फ़ण्ड और इंग्लैंड स्थित हिंदू स्वयंसेवक संघ और सबरंग कम्युनिकेशंस जैसे संगठनों से भी आर्थिक सहायता मिलती रही है। बहरहाल, यह आवश्यक नहीं है कि दान देने वाले सभी संगठन या लोग संघ के समर्थक ही हों।

शुक्ल को सुझाव धर्मांतरण और पृथकता की भावना की समस्या से निपटने के लिए आदिवासियों को 'मुख्यधारा' से जोड़ने का सुझाव दिया। उन्होंने शुक्ल से कहा कि उन्हें 'समाज सेवा करने वाले राष्ट्रवादी संगठनों' की मदद लेनी चाहिए। रमाकांत देशपाण्डे के जीवनी-लेखक के.डी. सप्रे के अनुसार, इसके बाद ही मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री ने पी.जी. वानीकर की सिफ़ारिश पर देशपाण्डे को जनजातीय कल्याण विभाग का क्षेत्रीय निदेशक नियुक्त किया।[8] मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री द्वारा संघ से जुड़े एक व्यक्ति को यह पद देना आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि कांग्रेस की मध्य प्रदेश शाखा में हिंदू परम्परावादी धड़े का प्रभुत्व था। हिंदू महासभा के बालकृष्ण मुंजे ने ही रविशंकर शुक्ल को कांग्रेस से परिचित करवाया था।[9]

जब देशपाण्डे जशपुर पहुँचे तो उन्होंने पाया कि वहाँ मिशनरियों के सौ प्राथमिक विद्यालय काम कर रहे हैं। सप्रे के अनुसार, उन्होंने सरकार से सौ सरकारी प्राथमिक विद्यालय खोलने की अनुमति माँगी। जहाँ कहीं भी मिशन का स्कूल था, वहाँ देशपांडे ने अपना एक स्कूल खोला। उन्होंने इन स्कूलों में शिक्षकों को ब्राह्मणत्व जताने वाली उनकी चोटी और शारीरिक शक्ति के आधार पर नियुक्त किया। शिक्षकों को यह चेतावनी दी गयी कि उन्हें अपनी सुरक्षा ख़ुद करनी होगी। इनमें से कुछ शिक्षकों ने सिर्फ़ चौथी कक्षा तक ही पढ़ाई की थी।[10] ग़ौरतलब है कि ईसाई मिशनरियों ने देशपाण्डे द्वारा स्थापित विद्यालयों के शिक्षकों के बारे में यह शिकायत की थी कि यहाँ शिक्षकों को विद्यार्थियों को शिक्षा देने के बजाय ईसाइयों को धमकाने के लिए नियुक्त किया गया है। हक़ीक़त यही है कि देशपाण्डे के नेतृत्व में काम करने वाले स्कूल न सिर्फ़ हिंदू समर्थक थे, बल्कि वे ईसाई विरोधी भी थे।[11]

सरकारी सेवा में आने के दो साल बाद ही देशपाण्डे ने इससे इस्तीफ़ा दे दिया। असल में बदलते राजनीतिक हालात से यह स्पष्ट हो गया था कि सरकार अब उन्हें पूरा समर्थन नहीं देगी। उन्हें कैथॅलिकों का प्रतिरोध करने में काफ़ी सफलता मिली थी। उनका एक अन्य प्रमुख लक्ष्य आदिवासी लड़कों को

---

[8] के.डी. सप्रे (1999) : 24.

[9] कांग्रेस की हिंदूवादी सोच रखने वाले नेताओं की धारा और संघ के बीच जुड़ाव के लिए देखें, क्रिस्टॉफ़ जेफ़्रेलॉ (1996); मध्य प्रदेश की रविशंकर शुक्ला की सरकार ने 1954 में लगातार हो रहे धर्मांतरण संबंधी शिक़ायतों पर विचार करने के लिए नागपुर उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश भवानी शंकर नियोगी की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया. आयोग ने यह पाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही अमेरिकी मिशनरियों द्वारा धर्मांतरण में वृद्धि हुई है, और बाहर से आये पैसे का अधिकांश हिस्सा प्रचारकों को दिया जाता है. लोगों को ईसाई बनाने के लिए बल-प्रयोग और आर्थिक लालच— दोनों ही तरीक़ों का इस्तेमाल किया गया. इस आयोग ने एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की जिसके तहत 'पश्चिम की सर्वोच्चता स्थापित करने' का ईसाई षड्यंत्र जारी था और यह 'राज्य की सुरक्षा' के लिए ख़तरा था. देखें, गवर्नमेंट ऑफ़ मध्य प्रदेश (1956क)

[10] के.डी. सप्रे (1999) : 16.

[11] नंदिनी सुंदर (2016).

'हिंदुत्व का संस्कार' देना भी था, लेकिन सरकार के नियमों के कारण वे अपना यह लक्ष्य हासिल नहीं सकते थे। इसलिए उन्होंने एक अन्य स्वयंसेवक मोरोभाउ केतकर के साथ मिल कर वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना की।[12] जशपुर के महाराज ने इस संगठन को वित्तीय और नैतिक समर्थन प्रदान किया। रमाकांत देशपाण्डे ने यह स्पष्ट किया है कि 'हम ऐसा वनवासी नेतृत्व चाहते हैं जो हिंदुओं के बीच एकता स्थापित कर पाए। हमें ऐसा समाज बनाने की आवश्यकता है जिसे हिंदुत्व पर गर्व हो ... हमारा काम जागरूकता लाना और नेतृत्व तैयार करना है।'[13]

आश्रम के आरम्भिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि इसका कांग्रेसी सरकारों के साथ बेहद सहज संबंध था। इस समय इसकी स्थिति काफ़ी हद तक वैसी ही थी, जैसी की औपनिवेशिक शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों की थी। आश्रम कुछ ख़ास अधिकारियों या राजनेताओं पर काफ़ी निर्भर था। इसने आधिकारिक रूप से यह घोषणा ज़रूर की कि यह सरकारी आर्थिक सहायता पर निर्भर नहीं है, लेकिन इसने लगातार यह प्रयास किया है कि वरिष्ठ नेताओं या अधिकारियों द्वारा इसे एक ऐसे 'ग़ैर-राजनीतिक' संगठन के रूप में मान्यता मिले जो 'आदिवासियों की स्थिति में सुधार लाने' के लिए 'अच्छा काम' कर रहा है। आरम्भिक दौर में, इस पूरी प्रक्रिया में यह संगठन संघ के साथ अपने जुड़ाव को काफ़ी हल्के रूप में प्रस्तुत करता रहा है। दूसरी ओर, अपने कार्यकर्त्ताओं के लिए तैयार किये गये आंतरिक परचे में इस संगठन ने संघ से अपने जुड़ाव पर बल दिया। इसकी घोषित नीति यह है कि सरकारी आर्थिक सहायता पर निर्भर होने से स्वैच्छिक काम करने की भावना दुर्बल हो जाती हैं। साथ ही, इससे लोगों को भर्ती करने या काम के चयन पर भी पाबंदी लगती है। और दरअसल इसीलिए 'लोगों से' पैसा एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। स्थानीय स्तर पर व्यापारी इसकी आर्थिक सहायता के मुख्य स्रोत हैं। वहीं अनिवासी भारतीयों के अमेरिका स्थित इंडिया डिवेलपमेंट रिलीफ़ फण्ड (आईडीआरएफ) और इंग्लैंड स्थित हिंदू स्वयंसेवक संघ (साउथ एशिया सिटीज़न्स वेब या एसएसीडब्ल्यू) और सबरंग कम्युनिकेशंस जैसे संगठनों से भी आर्थिक सहायता मिलती रही है। बहरहाल, यह आवश्यक नहीं है कि दान देने वाले सभी संगठन या लोग संघ के समर्थक ही हों।[14] इसके साथ ही, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि केंद्र में भारतीय जनता पार्टी की सरकार होने से भी संघ के संगठनों को काफ़ी आर्थिक लाभ मिल रहा है, या जिन राज्यों में भाजपा की सरकारें होती हैं, वहाँ संघ और उसके आनुषंगिक संगठन ज़्यादा आसानी से अपना काम कर पाते हैं और सरकारी मशीनरी भी अमूमन इनके लिए सहायक के रूप में होती है।[15]

वनवासी कल्याण आश्रम ने अपने काम को मुख्य रूप से पाँच भागों में बाँटा है : शिक्षा, चिकित्सा, महिला कार्य, श्रद्धाजागरण और हितरक्षा।

---

[12] के.डी. सप्रे, वही : 25.

[13] बालासाहेब देशपाण्डे (1990) : 17.

[14] इन पहलुओं की विस्तार से जानकारी के लिए देखें, नंदिनी सुंदर (2016क).

[15] स्नेहलता वैद (2011).

शिक्षा

रमाकांत देशपाण्डे ने आरम्भ से ही स्कूलों के माध्यम से आदिवासी लड़के-लड़कियों को वनवासी कल्याण आश्रम से जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने आरम्भ में यह विचार किया था कि स्कूलों को शारीरिक हिंसा के संचित केंद्र के रूप में विकसित किया जा सकता है। इस विचार का विस्तार करते हुए गाँवों में संघ की गतिविधियों के विस्तार के केंद्र छात्रावासों का विकास किया गया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि 'हम यह जानते हैं कि हमारे छात्रावास के सभी विद्यार्थी पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता नहीं बनेंगे। लेकिन इन सभी को हमारे संस्कार मिलेंगे ... हमारी सभी गतिविधियों में सबसे महत्त्वपूर्ण काम छात्रावासों को चलाना है। हमारे छात्रावासों के पीछे के संस्कार अमूमन छात्रावासों की स्थापना के पीछे काम करने वाले उद्देश्यों से भिन्न होते हैं। हम अपने छात्रावासों इस तरह बनाना चाहते हैं कि वे क्षेत्र के लोगों का ध्यान खींचे। इसके द्वारा हम सम्पूर्ण क्षेत्र में जागरूकता लाना चाहते हैं।'[16]

आश्रम के छात्रावासों की काफ़ी माँग है और यहाँ तक कि कुछ ईसाई भी इसके लिए आवेदन करते हैं। यद्यपि आस-पास का परिवेश काफ़ी जर्जर अवस्था में है (विशेषकर लड़कियों के हॉस्टल में) और खाना भी बहुत ही साधारण है, लेकिन ये छात्रावास एक सम्पूर्ण और गहन अनुभव उपलब्ध कराते हैं। इनमें हिंदू देवी-देवताओं के चित्र काफ़ी संख्या में लगाए जाते हैं। इन्हें सुनियोजित तरीक़े से तैयार किया गया है ताकि बच्चे हिंदू धर्म और उसके प्रतीकों के बारे में जान पाए। छात्रावास में रहने वाले हर लड़के या लड़की के दैनिक जीवन में सुबह की प्रार्थना, शाखा में भागीदारी, शाम की शाखा में भागीदारी और फिर आरती तथा भजन सम्मिलित है। इन सभी की गहरी छाप पड़ती है। बच्चे सुबह एक साथ *हनुमान चालीसा* और *रामचरितमानस* की चौपाइयाँ भी पढ़ते हैं।[17] असल में, बच्चों के मस्तिष्क पर कर्मकाण्डों की जानकारी से ज़्यादा स्कूल और छात्रावास में होने वाली रोज़मर्रा की गतिविधियों की ज़्यादा गहरी और अमिट छाप पड़ती है।

आश्रम बच्चों के लिए स्कूल के अलावा, स्कूल के पहले की अवस्था के लिए केंद्र भी संचालित करता है ('बालवाड़ी' या 'बाल संस्कार केंद्र')। इसमें बच्चों को शुरुआती स्तर पर पढ़ना, लिखना, और 'संस्कार' सिखाया जाता है। इन संस्कारों में आदिवासी बच्चे को अपना पारम्परिक 'जोहार' करने के बजाय 'प्रणाम' कहना सिखाया जाता है। उन्हें यह बताया जाता है कि वे अपने से बड़ों के पैर छुएँ तथा 'सरस्वती माता की जय', 'महापति राम की जय' तथा 'वृंदावन कृष्ण की जय' जैसे जयकारे लगाएँ। 'युवकों के दिमाग़ में खेल के प्रति प्यार' को देखते हुए नौजवानों के लिए 'एकलव्य खेलकूद केंद्र' की व्यवस्था की गयी है। यहाँ बच्चों को सिखाया जाता है कि वे खेल के पहले और खेल के बाद मातृभूमि की जयकार करते हुए 'भारत माता की जय' का नारा लगाएँ। जो खेल पहले आदिवासी संस्कृति से संबंधित थे, उनका 'अग्निकुण्ड' और 'राम-रावण' जैसा नामकरण किया गया है। शाखाओं की तरह यहाँ भी खेल का रेफ़री या निर्णायक बच्चों को संस्कृत में बुलाता है। यह सच है कि इस प्रकार के खेलकूद में भाग लेने वाले सभी युवक संघ समर्थक नहीं होते, किंतु इस प्रकार की आनंददायक गतिविधि का आयोजन करने के कारण आश्रम के बारे में लोगों के मन में सद्भाव बढ़ता है। हर चार वर्ष के बाद आश्रम अखिल भारतीय स्तर पर खेलकूद का आयोजन करता है। अमूमन यह प्रयास किया जाता है कि इसमें आश्रम या संघ द्वारा संचालित स्कूलों के अतिरिक्त अन्य स्कूलों के विद्यार्थी भी भाग लें, किंतु ईसाई बच्चों को इसमें भाग लेने से हतोत्साहित किया जाता है।[18]

ईसाई मिशनरियों और आश्रम द्वारा दी जाने वाली शिक्षा में एक बुनियादी समानता है। जहाँ ईसाई मिशनरी आदिवासी बच्चों / बच्चियों और युवकों / युवतियों को ईसाई धर्म के मूल्यों की ओर

[16] बालासाहेब देशपाण्डे (1990) : 17.

[17] नंदिनी सुंदर (2016क).

[18] वही.

आकर्षित करते हुए उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं, वहीं आश्रम उनमें हिंदू धर्म के मूल्यों को भरने का प्रयास करता है। लेकिन इनमें एक बुनियादी अंतर भी हैं। जहाँ ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों को उच्च शिक्षा दिलाने का प्रयास भी करती है, वहीं आश्रम यह काम बहुत सीमित स्तर तक ही करता है।[19]

आदिवासी बच्चे को अपना पारम्परिक 'जोहार' करने के बजाय 'प्रणाम' कहना सिखाया जाता है। उन्हें यह बताया जाता है कि वे अपने से बड़ों के पैर छुएँ तथा 'सरस्वती माता की जय', 'महापति राम की जय' तथा 'वृंदावन कृष्ण की जय' जैसे जयकारे लगाएँ। 'युवकों के दिमाग़ में खेल के प्रति प्यार' को देखते हुए नौजवानों के लिए 'एकलव्य खेलकूद केंद्र' की व्यवस्था की गयी है। यहाँ बच्चों को सिखाया जाता है कि वे खेल के पहले और खेल के बाद मातृभूमि की जयकार करते हुए 'भारत माता की जय' का नारा लगाएँ। जो खेल पहले आदिवासी संस्कृति से संबंधित थे, उनका 'अग्निकुण्ड' और 'राम-रावण' जैसा नामकरण किया गया है। ... यह सच है कि इस प्रकार के खेलकूद में भाग लेने वाले सभी युवक संघ समर्थक नहीं होते, किंतु इस प्रकार की आनंददायक गतिविधि का आयोजन करने के कारण आश्रम के बारे में लोगों के मन में सद्भाव बढ़ता है।

चिकित्सा

ईसाई मिशनरियों की तरह ही आश्रम ने भी चिकित्सा को अपने कार्य में सम्मिलित किया है। इसके पीछे भी मुख्य चिंता यह रही है कि वनवासी समाज 'किसी पादरी के द्वारा दी जाने वाली एक गोली के बदले क्रॉस पहन कर धर्मांतरित हो जाता है।'[20] स्नेहलता वैद्य के अनुसार, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड के कई स्थानों पर आश्रम ने अपने अस्पताल खोले, और इसके माध्यम से आदिवासियों (वननिवासियों) को कुपोषण से निजात दिलाने और स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास किया गया। कई स्थानों पर स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन किया।[21] आश्रम अपनी पत्रिकाओं या प्रकाशित सामग्री में अपने स्वास्थ्य संबंधी कार्य को प्रमुखता से स्थान देता है।

महिला कार्य

वनवासी कल्याण आश्रम ने आदिवासी महिलाओं को परिवार से बाहर सामूहिक जीवन और स्वयं सहायता समूहों से जुड़ने के लिए प्रेरित किया है। इसके द्वारा इन महिलाओं को स्वावलम्बी बनने के साथ ही साथ उन्हें पारम्परिक हिंदूवादी मूल्यों से जोड़ने की भी कोशिशें की जाती रही हैं। 'बिहार, झारखण्ड जैसे प्रांतों में महिलाओं द्वारा शिवजी पर जलाभिषेक करना, असम के एन. सी. हिल्स पर सत्संग केंद्र चलाना, दमासा समाज में भगवान शिव के भजन गाने के लिए एकत्रित होना, जैसे श्रद्धाजागरण के कई प्रयास महिलाओं के माध्यम से चलते हैं। मातृहृदयी महिलाओं के माध्यम में कई प्रांतों में बाल संस्कार केंद्र चल रहे हैं।'[22] निश्चित तौर पर, महिलाओं को पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों से जोड़ना, उनके मन में हिंदू धर्म के प्रति श्रद्धा पैदा करना आश्रम का मुख्य लक्ष्य है। साथ में यह भी माना जा सकता है कि आश्रम आदिवासी महिलाओं को घर की देहरी से बाहर निकलकर सामुदायिक कार्यों की ओर भी प्रेरित कर रहा है।

---

[19] अभय खाखा के अनुसार, ईसाई मिशनरियाँ और वनवासी कल्याण आश्रम दो अलग-अलग मॉडल पर कार्य करते हैं. वनवासी कल्याण आश्रम का मॉडल आदिवासी बचाओ अर्थात् आदिवासियों के संरक्षण से संबंधित है. इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि इनका धर्मांतरण हो रहा है और इन्हें बचाया जाना चाहिए. दूसरी ओर, ईसाई मिशनरियों के मॉडल में शिक्षा स्वास्थ्य और समाज सेवा— इन बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है... ज़मीन को लेकर या आदिवासियों के हक़ को लेकर जो अवधारणा या समझ बनी है, वह ईसाई मिशनरी की व्यवस्था अर्थात् उसके शैक्षणिक संस्थाओं से जुड़ने के कारण बनी है'. देखें, अभय खाखा (2018) : 170.

[20] स्नेहलता वैद (2011) : 34.

[21] देखें, वही : 34-40.

[22] वही : 44-45.

श्रद्धाजागरण

श्रद्धाजागरण वनवासी कल्याण आश्रम के काम का मुख्य तत्त्व है। वह अपने विद्यालयों और छात्रावासों में विद्यार्थियों के बीच हिंदू धर्म के मूल्यों का प्रसार करता है और महिलाओं के बीच हिंदू धर्म के प्रतीकों के प्रचलन को बढ़ावा देता है। यह आदिवासी (वनवासी) लोगों की परम्पराओं की इस तरह व्याख्या करता है कि वे व्यापक हिंदू पौराणिक कथाओं और मान्यताओं का हिस्सा लगने लगते हैं। असल में, यह आश्रम के विचारों के मूल में है कि 'वनवासी' लोग मूलतः हिंदू ही हैं। इसलिए यह ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रसार का विरोध करने के साथ-साथ इस थीसिस को भी मज़बूती से नकारता है कि आदिवासी (वनवासी) न तो हिंदू है और न ही ईसाई, बल्कि इनका अपना एक अलग धर्म है। स्नेहलता वैद्य के अनुसार, 'वनवासी समाज अपने सम्पूर्ण हिंदू समाज का अभिन्न अंग है। धर्म के प्रति सभी की अटूट आस्था है। अपने वनवासी बंधुओं में यह श्रद्धा क़ायम रहे, इसलिए ग्राम में रामायण भजन मण्डली की स्थापना की गयी।'[23] नंदिनी सुंदर मानती हैं कि आश्रम के विस्तार में स्थानीय व्यापारियों और साधुओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यज्ञ और धर्म जागरणों के आयोजन द्वारा इन दोनों को गोलबंद किया गया। व्यापारियों ने ऐसे आयोजनों के लिए पैसा और अन्य संसाधन उपलब्ध कराए। वहीं, गहिरा गुरु, रामभिक्षुक महाराज तथा स्वरूपानंद जैसे स्थानीय साधुओं ने आश्रम को 'धर्मजागरण' के उसके मिशन में सहायता उपलब्ध कराई।[24] स्पष्टतः श्रद्धाजागरण के माध्यम से आश्रम हिंदू धर्मों के मूल्यों का प्रसार करता है।[25]

हितरक्षा

वनवासी कल्याण आश्रम में अलग से 1990 में एक हितरक्षा विभाग की स्थापना की गयी।[26] इसके माध्यम से ठेकेदारों, सरकारी अधिकारियों आदि के शोषण से वनवासियों (आदिवासियों) को बचाने का लक्ष्य रखा गया। इस संदर्भ में हम अगले भाग में पेसा और वन अधिकार क़ानून के संदर्भ में आश्रम के दृष्टिकोण और कार्यों पर विचार करेंगे।

हितरक्षा के अतिरिक्त आश्रम खेल-कूद के आयोजन के माध्यम से आदिवासी युवाओं को एक-दूसरे से और अपने संगठन से जोड़ने का प्रयास करता है। इसमें नगरीय कार्य पर भी बल दिया जाता है। इसके माध्यम से एक ओर बड़े शहरों से वन क्षेत्रों में काम के लिए संसाधन एकत्रित किए जाते हैं। वहीं दूसरी ओर नगर निवासियों के मन में वनवासियों (आदिवासियों) के प्रति चिंता और संवेदना जगाने का प्रयास किया जाता है। इस संगठन की यह कोशिश होती है कि वह आयोजनों के माध्यम से शहर के लोगों को वनवासियों (आदिवासियों) की परम्परा और संस्कृति से परिचित करवाएँ।

स्पष्ट तौर पर, आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के बढ़ते प्रभाव ने आश्रम की स्थापना में सर्वप्रमुख भूमिका अदा की, और इसे कांग्रेस के कुछ दक्षिणपंथी सोच वाले नेताओं का सक्रिय समर्थन मिला। इसने मुख्य रूप से शिक्षा और सांस्कृतिक जीवन में हस्तक्षेप किया। इसने आदिवासी समूहों के बीच हिंदू जीवन के मूल्यों का प्रसार किया, और जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इसने इसी

[23] वही : 58.

[24] नंदिनी सुंदर (2016क).

[25] नंदिनी सुंदर धर्म परिवर्तन के मसले पर वनवासी कल्याण आश्रम और ईसाई मिशनरियों की तुलना को ग़लत मानती हैं. उनके अनुसार, 'यह सच है कि ईसाई मिशनरियाँ और वनवासी कल्याण आश्रम— दोनों ही लोगों का धर्म परिवर्तन करना चाह रहे हैं. लेकिन ईसाई मिशनरियों में हमें यह ध्यान रखना होगा कि पुराने कैथॅलिक धर्म परिवर्तन नहीं कराते, किंतु इंजीली मिशनरी ऐसा करते हैं ... वनवासी कल्याण आश्रम एक राजनीतिक संगठन है. यह एक धार्मिक संगठन नहीं है. चूँकि वे धर्म को आधार बनाकर अपनी राजनीति करते हैं, तो वे उसके साथ आदिवासी को हिंदू कहने की कोशिश करते हैं. इसके साथ ही वे आदिवासियों पर उत्तर भारतीय संस्कृति को थोपने का प्रयास करते हैं'. देखें, 'बीच बहस में' (2018) : 174-75.

[26] स्नेहलता वैद (2011) : 61.

संदर्भ में इसने यह नारा गढ़ा — 'तू और मैं एक रक्त'।[27] लेकिन इसके साथ ही, आश्रम ने आदिवासियों की 'हित रक्षा' के कार्यक्रमों पर भी बल दिया, अर्थात् इसने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि आदिवासियों का अपनी भूमि और वन संसाधनों पर अधिकार रहे। इस संदर्भ में आश्रम द्वारा 2015 में व्यापक परिचर्चा के बाद तैयार किया गया *भारत की जनजातियों हेतु एक नीति दृष्टिपत्र* एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

II

आदिवासियों का वन संसाधनों पर अधिकार और वनवासी कल्याण आश्रम

हर संगठन अपनी स्थापना के समय से ही कुछ बुनियादी लक्ष्य तय करता है। वनवासी कल्याण आश्रम ने आरम्भ से ही ख़ुद को ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के बरअक्स परिभाषित किया, और इसी के अनुरूप अपना लक्ष्य तय किया। अर्थात् एक ओर इसने आदिवासियों के धर्मांतरण को रोकने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर इसने इनके बीच हिंदू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए भी ज़ोर-शोर से काम किया। इसके हितरक्षा विभाग ने स्थानीय स्तर पर आदिवासियों के हितों की सुरक्षा के लिए प्रयास किये हैं, लेकिन अमूमन ये प्रयास स्थानीय अधिकारियों से बातचीत करने तक ही सीमित रहा है।[28] हालाँकि कम से कम संगठन के स्तर पर इसने यह प्रयास किया है कि यह ग़ैर-राजनीतिक सामाजिक आंदोलनों द्वारा उठाए गये भूमि और विस्थापन के मुद्दों को अपना मुद्दा बना ले, और उनकी माँगों का समर्थन करे। इसका एक बड़ा कारण यह है कि ये माँगें आदिवासी समाज की चेतना का अभिन्न हिस्सा बन चुकी हैं। अर्थात् आदिवासियों के बीच अपने जल, जंगल और ज़मीन को लेकर जागरूकता बढ़ी है। ऐसे में, कोई संगठन इन माँगों की उपेक्षा या अवहेलना करने का ख़तरा नहीं मोल ले सकता है।

---

[27] यह नारा वनवासी कल्याण आश्रम का 'मुख्य वाक्य' बन चुका है तथा यह उनके हर प्रमुख पोस्टर या बोर्ड पर अंकित रहता है. इसने कई ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की, जिसमें हिंदुओं के पौराणिक ग्रंथों का उद्धरण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि 'वनवासी' हिंदू ही हैं. देखें, लक्ष्मण टोपले (2011).

[28] स्नेहलता वैद कुछ ऐसे उदाहरणों का उल्लेख करती हैं, जिसमें वनवासी कल्याण आश्रम ने स्थानीय स्तर पर अधिकारियों से बातचीत करके आदिवासी समूहों को वनोपजों का सही मूल्य या भू-अधिग्रहण के बदले उचित मुआवज़ा दिलाने में सफलता हासिल की. वही : 62-3.

भारतीय राज्य और पूँजीपति वर्ग के लिए भी आश्रम की गतिविधि किसी समस्या का कारण नहीं बनी है। ... अपने दृष्टि-पत्र में, और कई मौक़ों पर अपने बयानों के माध्यम से, आदिवासियों को अधिकार देने वाले क़ानूनों के क्रियान्वयन की माँग की है। ... अचरज की बात यह है कि इस संगठन ने कभी भी इन माँगों को लागू करवाने के लिए आंदोलन का सहारा नहीं लिया। ... अमूमन इसने अपने-आप को दस्तावेज़ तैयार करने, बयान जारी करने, प्रतिनिधि-मण्डल के साथ मंत्रियों से मिलने जैसे कार्यों तक ही सीमित रखा। भाजपा शासित राज्यों ने भी आदिवासियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ चलाईं, लेकिन उन्होंने उन्हें सुनिश्चित क़ानूनी अधिकार देने के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया।

पेसा और वन अधिकार क़ानून दो ऐसे क़ानून हैं, जो अनुसूचित जनजातियों और अन्य वन निवासी समूहों को जंगल और इसके संसाधनों पर महत्त्वपूर्ण अधिकार देते हैं। पेसा क़ानून संसद द्वारा 1996 में पारित किया गया था। यह पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में पंचायती राज का विस्तार करता है, और इसके साथ ही यह अनुसूचित जनजातियों को अपने गाँव में स्वायत्त जीवन व्यतीत करने और अपने निकट के वन संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार भी देता है। दूसरी ओर, 2006 में पारित हुआ वन अधिकार क़ानून पूरे देश के वन क्षेत्रों पर लागू होता है।[29] हालाँकि यह भी सच है कि इन दोनों क़ानूनों के सभी प्रावधान प्रगतिशील नहीं हैं। मसलन, पेसा में ग़ैर-अनुसूचित जनजाति समूहों के अधिकारों की बात नहीं की गयी है; वन अधिकार क़ानून में ग़ैर-अनुसूचित जनजाति समूहों के लिए शर्तें काफ़ी सख़्त हैं, जिसके कारण अमूमन वे इस क़ानून का लाभ उठाने में असमर्थ रहे हैं। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह है कि इन क़ानूनों का सही तरीक़े से क्रियान्वयन नहीं हुआ है। पेसा की मूल भावना की अमूमन उपेक्षा की गयी है। वहीं, वन अधिकार क़ानून को भी आधे-अधूरे तरीक़े से लागू किया गया है।[30]

आश्रम ने पेसा और वन अधिकार क़ानून की मूल भावना का समर्थन किया है। हालाँकि यह भी सच है कि इसने किसी प्रकार की गोलबंदी करने का प्रयास नहीं किया। फिर भी, पेसा और अनुसूचित क्षेत्र के विस्तार के मसले पर आश्रम ने अपने नीति दृष्टिपत्र में जो दृष्टिकोण अपनाया, वह गाँधीवादी या वामपंथी रुझान रखने वाले संगठनों की भाँति ही है। पेसा क़ानून पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में ही लागू होता है। लेकिन आदिवासियों की एक बड़ी जनसंख्या पाँचवीं अनुसूची के बाहर रहती है, इसके कारण यहाँ पाँचवीं अनुसूची के प्रावधान या पेसा क़ानून लागू नहीं होते हैं। विभिन्न आदिवासी संगठनों की माँग रही है कि ऐसे आदिवासी क्षेत्रों में भी पाँचवीं अनुसूची का विस्तार किया जाए। मिसाल के तौर अखिल भारतीय वन जन श्रमजीवी यूनियन लम्बे समय से यह माँग करता रहा है कि पूरे कैमूर क्षेत्र को पाँचवीं अनुसूची में शामिल किया जाए। अपने नीति दृष्टिपत्र में आश्रम ने स्पष्ट रूप से यह माँग रखी कि

> हम यह संस्तुति करते हैं कि देश भर के जिन गाँवों एवं प्रखण्डों में ऐसे 40 प्रतिशत या इससे अधिक जनजाति आबादी है, (ऐसे) गाँवों की पहचान कर उन्हें अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया जाए, ताकि संवैधानिक प्रावधानों एवं पेसा और ऐसे ही क़ानूनों का लाभ देश के सभी जनजाति लोगों को समान रूप से उपलब्ध हो।[31]

आश्रम द्वारा सैद्धांतिक स्तर पर हमेशा ही वन अधिकार क़ानून का समर्थन किया गया। हालाँकि जैसा कि पहले रेखांकित किया गया है कि वन अधिकार क़ानून बनने की प्रक्रिया से संबंधित आंदोलन

---

[29] कमल नयन चौबे (2016).

[30] पेसा और वन अधिकार क़ानून की कमियों और इनके क्रियान्वयन की सीमाओं के लिए देखें, नंदिनी सुंदर (2009); कमल नयन चौबे (2015 ग), (2016); मधु सरीन (2014).

[31] अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम (2015) : 30.

और गोलबंदी में इसने सक्रियतापूर्वक भाग नहीं लिया, किंतु निश्चित रूप से आदिवासियों के अधिकारों के प्रति एक संवेदनशीलता दिखाई, जिसके कारण भाजपा ने भी इस क़ानून का समर्थन किया। इसने *भारत की जनजातियों हेतु एक दृष्टिपत्र* में इस बात पर असंतोष जताया कि वन अधिकार क़ानून को सही तरीक़े से क्रियान्वित नहीं किया जा रहा है। इस दृष्टिपत्र में स्पष्ट रूप से यह रेखांकित किया कि ऊपर से नीचे तक वन अधिकारी इस क़ानून को क्रियान्वित करने के लिए न सिर्फ़ अनिच्छुक लगते हैं, बल्कि उनका रुख़ नकारात्मक रहा है। इस संदर्भ में वन अधिकारियों द्वारा प्रायोजित संयुक्त वन समितियों के माध्यम से वन विभाग की नकारात्मक भूमिका रही है। इसने राज्यों द्वारा वन अधिकार क़ानून को सही तरीक़े से लागू न करने की तीखी आलोचना की। इसके अनुसार, भारतीय वन क़ानून 1927 और वन अधिकार क़ानून 2006 के प्रावधानों के विरोधाभास के कारण वन अधिकार क़ानून को लागू करना कठिन हो रहा है। वन निवासियों की परेशानियों का उल्लेख करते हुए इस दस्तावेज़ में यह उल्लेख किया गया कि 'इस विधान के अंतर्गत मिले अधिकारों को मान्य करने से बचने के लिए वन अधिकारी पीढ़ियों से क़ाबिज़ जनजाति समुदायों को वन भूमि से हटाने का प्रयास कर रहे हैं। इसके परिणास्वरूप वे लोग आत्महत्या कर रहे हैं।[32] आश्रम ने अपने इस दृष्टिपत्र में 'राज्य के नीति निर्माताओं' तथा 'वन-निवासी समुदायों एवं सबंधित संगठनों के लिए' कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये।

> राज्य के नीति निर्माताओं' को दिये सुझावों में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि आदिवासियों के साथ ही साथ अधिकारियों को भी वन अधिकार क़ानूनों के प्रति जागरूक ओर संवेदनशील बनाया जाए। इसके अलावा, इसमें भारतीय वन अधिनियम को के स्थान पर एक नया क़ानून बनाने पर बल दिया गया, जो वन अधिकार क़ानून, वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम तथा पेसा के प्रावधानों के अनुरूप हो। इसके अतिरिक्त इसने वन ग्रामों को राजस्व गाँवों में परिवर्तित करने का जल्द से जल्द पूरा करने की भी सिफ़ारिश की। साथ ही, इसने वन अधिकार क़ानून और पेसा के आलोक में राज्य वन व्यापार निगमों तथा वन प्रबंधन समितियों की भूमिका को फिर से परिभाषित करने पर ज़ोर दिया।[33]

अपने इस दृष्टिपत्र में आश्रम ने वन-निवासी समुदायों एवं संबंधित संगठनों को कुछ प्रमुख सुझाव दिये। इससे वन-निवासी समुदायों के अधिकारों के बारे में इसकी नीतिगत समझ स्पष्ट रूप से सामने आती है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं में अभिव्यक्त किया जा सकता है : पहला, वन अधिकार क़ानून के अंतर्गत प्राप्त सामुदायिक अधिकारों पर विशेष ध्यान देना चाहिए; दूसरा, वन अधिकार क़ानून के प्रावधानों और प्रक्रियाओं के बारे में वन अधिकार समितियों और ग्राम सभाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए; तीसरा, वन अधिकार क़ानून को नकारने या इसे दुर्बल करने के प्रयासों का लोकतांत्रिक ढंग से पूरी शक्ति लगाकर विरोध करना चाहिए; चौथा, इसने वन-निवासी समुदायों को क़ानून के प्रावधानों और भूमि अधिकारों के अंकन, अधिकार-पत्रों को सुरक्षित रखने के बारे में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।[34]

इस दस्तावेज़ में इस प्रवृत्ति की आलोचना की गयी है कि पेसा और वन अधिकार क़ानून जैसे क़ानूनों को 'विकास' के लिए बाधक माना जाने लगा है। दस्तावेज़ के अनुसार :

> ... यह विचार निर्मित हो रहा है कि विकास परियोजनाओं की सुविधा के लिए हमें जो भी आवश्यक है, वह सब कुछ करना चाहिए। इस वातावरण में वनाधिकार एवं पेसा तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे क़ानूनों को प्रगति के मार्ग में अनावश्यक बाधाओं के रूप में देखा जाने लगा है, और ऐसे में नौकरशाही तरीक़ों से इन क़ानूनों की अनदेखी करने के प्रयास हो रहे हैं। वनाधिकार एवं ऐसे ही

[32] वही : 21.

[33] वही : 21-22.

[34] वही : 22.

क़ानूनों के प्रति अविश्वास का यह वातावरण, वनों में बसी एवं अन्य जनजातियों के लिए शायद सबसे बड़ी चिंता का कारण है।[35]

13 फ़रवरी, 2019 को सर्वोच्च न्यायालय ने यह फ़ैसला दिया कि जो वन-निवासी (अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक निवासी) वन-भूमि पर अपने स्वामित्व के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नहीं दे पाए हैं, उन्हें वन-भूमि से बेदख़ल कर देना चाहिए। आश्रम ने इस निर्णय का तीखा विरोध किया, और उसने सरकार से यह अनुरोध किया कि वन-निवासी समुदायों के हितों के संरक्षण के लिए पर्याप्त क़दम उठाए।[36] इसके अलावा, अपने इस दस्तावेज़ के माध्यम से आश्रम ने आदिवासी क्षेत्रों में भूमि अधिग्रहण का विरोध किया तथा यह माँग भी रखी कि ऐसे विभिन्न समूहों को जनजातियों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाए जिनकी जीवन-शैली वनवासियों की तरह है, लेकिन वे अनुसूचित जनजाति की श्रेणी का भाग नहीं हैं।[37]

III

अखिल भारतीय वन जन श्रमजीवी यूनियन और वनाश्रित समुदायों का अधिकार

अखिल भारतीय वन-जन श्रमजीवी यूनियन मुख्य रूप से वामपंथी विचारों से प्रभावित संगठन है। पहले यह संगठन राष्ट्रीय वन-जन श्रमजीवी मंच के रूप में था। इसमें देश के कई भागों के वनों में काम करने वाले संगठन जुड़े हुए थे। असल में इस संगठन के काम करने का तरीक़ा यही रहा है कि इसने स्थानीय स्तर पर आदिवासी / वनवासी समूहों के संगठन को निर्मित करने पर बल दिया है, और फिर यह उनकी गतिविधियों में समन्वय का काम करता था। बाद में 2012 में इस संगठन में ख़ुद को यूनियन में तब्दील किया, और इसका नाम रखा गया अखिल भारतीय वन-जन श्रमजीवी यूनियन। ऐसा करने के पीछे मुख्य प्रेरणा यह थी कि स्थानीय स्तर के विभिन्न संगठनों को एक विचारधारात्मक सूत्र में बाँधा जाए। यूनियन घोषित रूप से वामपंथ के प्रति आस्था रखता है, लेकिन साथ ही इसने आम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, बिरसा मुण्डा, भगत सिंह आदि को अपना आदर्श घोषित किया है। इसकी यह कोशिश है कि विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्त्ता एक-दूसरे से मिले-जुले और अपने संघर्ष के अनुभवों से सीखें।[38]

इस संगठन का काम पूरे देश में नहीं है। यह मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के सोनभद्र, दुधवा नैशनल पार्क (लखीमपुर खीरी जिला), उत्तराखण्ड के राजाजी नैशनल पार्क जैसे स्थानों पर सक्रिय है। इसके साथ ही झारखण्ड और पश्चिम बंगाल के कई वन इलाक़ों में भी इस यूनियन ने अपने काम का प्रसार किया है। इस यूनियन ने (अपने पूर्व रूप में) वन अधिकार क़ानून को पारित करवाने के संघर्ष में ज़ोरदार भूमिका निभाई है। इसने वन अधिकार क़ानून को पारित करवाने के लिए गठित कैम्पेन फ़ॉर सरवाइवल ऐंड डिग्निटी के साथ जुड़ कर वन-निवासी समूहों को इस क़ानून के पक्ष में गोलबंद करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने अपने प्रभाव वाले सभी इलाक़ों में अनुसूचित जनजातियों और वन-निवासियों को उनके वन-अधिकारों के बारे में जागरूक करने का काम किया। यह भी ग़ौरतलब है कि वन अधिकार क़ानून अपनी आरम्भिक अवस्था में सिर्फ़ अनुसूचित जनजातियों से संबंधित था, लेकिन बाद में ज़मीनी स्तर के संगठनों के दबाव में इसमें 'अन्य पारम्परिक वन-निवासी' शब्दावली

[35] वही.

[36] देखें, अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम (2019); हालाँकि बाद में ख़ुद सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस निर्णय को स्थगित कर दिया.

[37] अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम (2015).

[38] संगठन के सक्रिय कार्यकर्त्ता रजनीश गम्भीर से बातचीत, 13 अगस्त, 2018.

को जोड़ा गया। इस माँग को आंदोलन के माध्यम से क़ानून का भाग बनवाने में इस संगठन के कार्यकर्त्ताओं की प्रमुख भूमिका रही।[39]

यूनियन के कुछ सैद्धांतिक पहलुओं को निम्नलिखित बिंदुओं में अभिव्यक्त किया जा सकता है :

पहला, यह वन संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकारों का ज़ोरदार समर्थन करता है।[40] इसका यह मानना है कि स्थानीय समुदायों का न सिर्फ़ इन संसाधनों पर हक़ है, बल्कि ये समुदाय की वन संसाधनों का बेहतर संरक्षण करते हैं। इसलिए इसने राष्ट्रीय उद्यानों में भी आदिवासियों और वनों पर निर्भर अन्य समुदायों को वन संसाधनों पर अधिकार देने का समर्थन किया है। इसने संरक्षणवादियों और वन विभाग के अधिकारियों के इन तर्कों को नकारा है कि वन्य जीवों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यानों में वन निवासी समुदायों के अधिकारों को अत्यंत सीमित रखने की आवश्यकता है।

दूसरा, यह पेसा और वन अधिकार क़ानून को वन संसाधनों पर वन निवासियों के अधिकारों को स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण साधन मानता है। विशेष रूप से, वन अधिकार क़ानून के बेहतर क्रियान्वयन पर यूनियन लगातार ज़ोर देता रहा है। इसके कार्यकर्त्ताओं ने इस क़ानून के लिए चले आंदोलन में भाग लिया था, और इसे बेहतर बनाने के लिए कई सुझाव भी दिये थे। इन्होंने उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड में वन टांगिया गाँवों को इस क़ानून के तहत मान्यता दिलाने के लिए लगातार संघर्ष

[39] जब वन अधिकार विधेयक 13 दिसम्बर, 2005 को संसद में प्रस्तुत किया गया, तो इसका शीर्षक था : अनुसूचित जनजाति (वन अधिकार मान्यता) विधेयक 2005. विधेयक का पहला प्रारूप सिर्फ़ अनुसूचित जनजातियों की वन-भूमि पर अधिकार को मान्यता देने से संबंधित था. लेकिन लोकसभा में इस विधयेक को पेश करने के बाद इसे संयुक्त संसदीय समिति को दे दिया गया, जिसमें सभी दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे. आदिवासी संगठनों ने आपसी संवाद के माध्यम से कई ज्ञापन संयुक्त संसदीय समिति को सौंपे. इस पूरे विचार-विमर्श वन जन श्रमजीवी मंच से जुड़े कार्यकर्त्ताओं ने भी भाग लिया. ज़मीनी स्तर के कार्यकर्त्ताओं ने इस बात पर बल दिया कि बहुत से ग़ैर-अनुसूचित जनजाति लोग भी वनों पर निर्भर हैं और जंगल की ज़मीन पर रह रहे हैं या उस पर खेती कर रहे हैं. इसके बाद ही आंदोलन ने इन समूहों को भी वन अधिकार क़ानून के दायरे में लाने की माँग रखी. संयुक्त संसदीय समिति ने इसी के मद्देजनर एक नयी श्रेणी 'अन्य पारम्परिक वन निवासी' (अदर टेड्रिशनल फ़ॉरेस्ट ड्वेलर्स या ओटीएफडी) की श्रेणी निर्मित की. इसमें यह कहा गया कि 13 दिसम्बर, 2005 से पहले तीन पीढ़ियों से एक स्थान पर रहने वाले ग़ैर-अनुसूचित जनजातियों के सदस्य भी वन अधिकार क़ानून के दायरे में आएँगे. लेकिन जब यह क़ानून पारित हुआ तो इसमें यह शर्त भी जोड़ दी गयी कि इन्हें तीन पीढ़ियों और 75 सालों से एक स्थान पर बसा होना चाहिए. विस्तार के लिए देखें, कमल नयन चौबे (2015 ग).

[40] यूनियन के परचों में या इसके द्वारा आयोजित सभाओं में इन नारों का प्रयोग किया जाता है : 'प्राकृतिक सम्पदा हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', 'जंगल अपने आप का, नहीं किसी के बाप का' आदि.

आश्रम नागरिक समाज के एक ऐसे संगठन के रूप में सामने आता है, जिसका मुख्य लक्ष्य हिंदू धर्म के मूल्यों के अनुसार आदिवासियों को ढालना है ... । इसने शिक्षा, चिकित्सा, महिला, श्रद्धा-जागरण और हितरक्षा के कामों की बदौलत आदिवासी समाज में अपनी एक पैठ बनाई है। वह आदिवासियों के लिए एक स्तर तक शिक्षा, चिकित्सा आदि का बंदोबस्त करने की व्यवस्था करता है। इससे आदिवासियों के बीच भारतीय राज्य या मौजूदा व्यवस्था और आश्रम की विचारधारा के प्रति एक तरह की स्वीकार्यता निर्मित होती है। इसके कार्यों और भाजपा के अलावा कांग्रेस नेताओं से इसके संबंधों से यह बात आसानी से कही जा सकती है कि कभी भी किसी सरकार को यह संगठन 'चुनौती' या 'ख़तरा' नहीं लगा।

किया है, और कुछ स्थानों पर इसे कामयाबी भी मिली है।[41] इस संदर्भ में अगर हम दुधवा नैशनल पार्क में इस संगठन के बैनर तले चलने वाले संघर्ष पर ध्यान दें तो काफ़ी अहम बातें उजागर होती हैं। दुधवा नैशनल पार्क उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी ज़िले में भारत-नेपाल सीमा पर स्थित है। यहाँ पार्क के भीतर मुख्य रूप से थारू आदिवासी समुदाय के लोग रहते हैं। इनमें से एक गाँव सूरमा वन गाँव के रूप में था, शेष सभी गाँव राजस्व गाँव में तब्दील हो चुके हैं। इसका कारण यह है कि इस पार्क के निर्माण के समय ही उन्होंने पार्क के हाशिये के भाग में बसना स्वीकार कर लिया था। लेकिन इन गाँवों के लोगों को भी जंगलों से विभिन्न प्रकार के वनोपज लेने की आवश्यकता पड़ती है किंतु वन विभाग के रोक-टोक के कारण यहाँ के लोगों को जंगलों में जाकर वनोपज एकत्रित करने में बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पिछले कई वर्षों से वन-जन श्रमजीवी यूनियन ने यहाँ के लोगों को अपना स्थानीय संगठन बनाकर अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया है। लोगों वन अधिकार क़ानून के प्रावधानों के अनुसार अपने अधिकारों से संबंधित दस्तावेज़ अधिकारियों को दे दिया है। हालाँकि अभी भी थारू जनजाति के लोगों को वन संसाधनों पर उनका अधिकार नहीं मिल पाया है, लेकिन अपनी गोलबंदी के कारण यह वन विभाग की मनमानी गतिविधियों को रोक पाने में सफल रहे हैं।

तीसरा, इसने पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों का विस्तार करने को भी अपने एजेंडे का हिस्सा बनाया है। संविधान की पाँचवीं अनुसूची में सम्मिलित क्षेत्रों को कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं। विशेष रूप से, पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों के लिए ही पेसा क़ानून प्रभावकारी है, जो अनुसूचित जनजातियों को एक स्वायत्त जीवन जीने का आधार देता है। यूनियन ने यह माँग रखी है कि उत्तर प्रदेश (सोनभद्र) छत्तीसगढ़, बिहार और झारखण्ड में फैले कैमूर क्षेत्र को संविधान की पाँचवीं अनुसूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए।[42] हालाँकि यूनियन ने इस मुद्दे पर कोई व्यवस्थित आंदोलन नहीं किया है, किंतु इसने इन क्षेत्रों, विशेषकर सोनभद्र और बिहार के कैमूर ज़िले के आदिवासियों के बीच यह जागरूकता लाने का प्रयास किया है कि पाँचवीं अनुसूची में सम्मिलित होने से उन्हें अपना स्वायत्त जीवन जीने और अपने संसाधनों पर अधिकार रखने का मज़बूत आधार मिल जाएगा।

चौथा, इसने स्थानीय स्तर पर विविध संगठनों को स्वायत्तता प्रदान की है, जहाँ आदिवासी और अन्य समूह अलग नाम से संगठन बनाते हैं, किंतु वे यूनियन से जुड़े रहते हैं। यह रणनीति इसलिए कारगर रही है क्योंकि इसने आदिवासियों और अन्य वननिवासी समूहों के बीच से नेतृत्व का उभार किया है। इन लोगों के बीच अपने जीवन को प्रभावित करने वाले मसलों, क़ानूनों की भूमिका आदि की गहरी समझ विकसित हुई है।[43]

---

[41] यूनियन के पूर्ववर्ती रूप के वन टांगिया गाँवों, और महिलाओं के वनाधिकारों में इसके सक्रिय कार्यकर्त्ताओं की भूमिका के लिए देखें, कमल नयन चौबे (2015 ग : 289-92; 306-314).

[42] यूनियन की प्रमुख नेता रोमा से बातचीत, 2 अगस्त, 2014.

[43] मसलन, दुधवा नैशनल पार्क में अपने फ़ील्ड-वर्क के दौरान मैंने पाया कि वहाँ थारू जनजाति के लोगों में जंगल पर अपने हक़, वन

पाँचवाँ, यूनियन के अंतर्गत स्थानीय स्तर पर जो संगठन बने हैं, उनमें महिलाओं को अग्रणी भूमिका प्रदान की गयी है। इन आदिवासी महिलाओं ने न सिर्फ़ अपने परिवार के भीतर संघर्ष करके अपने संगठन के कार्य को सँभाला है, बल्कि इन्हें संगठन के भीतर भी पुरुष कार्यकर्त्ताओं की वर्चस्वशाली या अभिभावकीय भूमिका से जूझना पड़ा है। निवाधा और सुकालो गोण्ड जैसी आदिवासी महिला नेत्रियों ने इन बाधाओं से आगे बढ़ते हुए अपने संगठन का काम सँभाला है, और उन्होंने वन संसाधनों पर आदिवासियों के हक़ के संघर्ष को आगे बढ़ाया है।[44]

छठा, यद्यपि यह अलग से स्कूल नहीं चलाता लेकिन इसने अपने कार्यकर्त्ताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण देने की जागरूक रूप से कोशिश की है। उन्हें बिरसा मुण्डा, भगत सिंह, आम्बेडकर आदि के संघर्षों के बारे में जानकारी दी जाती है। इससे जुड़े सदस्य अलग-अलग क्षेत्रों में जाते हैं, वहाँ की समस्याओं को समझते हैं और वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से संवाद करते हुए विभिन्न मुद्दों पर अपनी राजनीतिक समझ बढ़ाते हैं। दुधवा नैशनल पार्क में यूनियन से जुड़ी एक कार्यकर्त्ता फूलमती ने मुझे यह बताया था कि 'हम संगठन के कार्य से झारखण्ड, उत्तराखण्ड, दिल्ली आदि कई जगहों पर जा चुके हैं, और हमारे यहाँ भी दूसरी जगहों के आदिवासी भाई-बहन आये हैं। इससे हमें यह समझने में मदद मिली है कि कैसे हमारे मुद्दे अन्य लोगों के मुद्दों से मिले हुए हैं।[45]

सातवाँ, यह यूनियन आंदोलन और जन दबाव की राजनीति में भरोसा रखता है। इसके कार्यकर्त्ता यह मानते हैं कि यदि वे एकजुट हैं, गोलबंद हैं तो वन विभाग और उनके कर्मचारी उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाएँगे। यह इनकी रणनीति का भी हिस्सा है। मसलन, अकसर लोग बड़े समूहों में जंगलों में जाते हैं, और कई बार वन विभाग के अधिकारियों द्वारा दी जाने वाली रोज़ाना की धमकियों या कार्रवाईयों सामूहिक रूप से प्रतिरोध करते हैं।

आठवाँ, यद्यपि यूनियन जन-दबाव को अपनी प्रमुख रणनीति मानता है, लेकिन यह संवाद के दरवाज़े को भी खुला रखता है। आवश्यकता पड़ने पर यह अदालत के रास्ते का भी सहारा लेता है। स्पष्टतः संघर्ष, संवाद और संवैधानिक रास्तों का प्रयोग करते हुए यह आदिवासियों के अधिकारों को सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।

ऐसा नहीं है कि यूनियन को आदिवासी समूहों को क़ानून के मुताबिक़ वन अधिकार दिलाने में बहुत बड़ी सफलता मिली है। कुछ वन ग्रामों और टांगिया गाँवों को वनाधिकार दिलाने में इसे कामयाबी मिली है, लेकिन कई अन्य स्थानों पर इसका संघर्ष अभी भी जारी है। लेकिन जिन स्थानों पर इसका काम चल रहा है, वहाँ इसने आदिवासी और अन्य वन निवासी समूहों में इतनी जागरूकता ला दी है कि अब वे खुलकर अपने अधिकारों की दावेदारी करते हुए वन विभाग के कर्मचारियों / अधिकारियों के मनमाने व्यवहार का विरोध कर रहे हैं। यहाँ ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यूनियन के लिए धर्मांतरण कोई मसला नहीं है, और वह इस संदर्भ में संवैधनिक प्रावधानों को स्वीकार करता है।

अधिकार क़ानून के प्रावधानों की काफ़ी अच्छी समझ थी. यद्यपि उनके पास इस क़ानून के सभी प्रावधानों की गहरी जानकारी नहीं थी, लेकिन ये इस क़ानून के मुख्य प्रावधानों को अच्छी तरह समझते थे, और इन्होंने इसके आधार पर राष्ट्रीय पार्क के अधिकारियों के समक्ष अपने अधिकारों की दावेदारी भी. अर्थात् जब पार्क के अधिकारियों ने पार्क में इनके प्रवेश को रोका तो इन्होंने दलील दी कि संसद द्वारा पारित क़ानून से उन्हें वन-संसाधनों पर अधिकार मिला हुआ है.

[44] इस संदर्भ में इस यूनियन से जुड़े संगठन कैमूर क्षेत्र महिला मज़दूर किसान समिति का उल्लेख किया जा सकता है. यहाँ रोमा के प्रयासों से आदिवासी महिलाएँ वन अधिकार के मसले पर सक्रिय हुईं. इस संदर्भ में सुकालो गोण्ड का ख़ास तौर पर उल्लेख किया जा सकता है. इन्हें अपने लगातार संघर्षों के कारण कई दफ़ा जेल भी जाना पड़ा है. देखें, सुकालो गोण्ड (2019); इसी तरह निवाधा ने दुधवा नैशनल पार्क में थारू आदिवासी महिलाओं को एकजुट करने और वन अधिकारियों के ख़िलाफ़ संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की. इन्होंने अपने संघर्ष में इस बात के बारे में बताया है कि कैसे इन्हें अपने परिवार के भीतर भी संगठन में काम करने को लेकर संघर्ष करना पड़ा. देखें, निवाधा राणा (2019).

[45] फूलमती से मैंने यह बातचीत 2016 में अपने फ़ील्ड-वर्क के दौरान की थी.

इसका मुख्य ज़ोर इस पर है कि आदिवासी और अन्य वनाश्रित समूह वन संसाधनों पर अपने संविधान और संसद द्वारा पारित क़ानूनों से मिले अधिकारों का उपयोग कर पाएँ।

अगर हम वन संसाधनों पर आदिवासियों के हक़ और पेसा तथा वन अधिकार क़ानून जैसे प्रगतिशील क़ानूनों को प्रभावशाली तरीक़े से लागू करने के मसले पर अखिल भारतीय आश्रम और अखिल भारतीय वन जन श्रमजीवी संगठन की माँगों पर विचार करें तो दोनों की माँगों में काफ़ी समानता सामने आती है। पेसा और वन अधिकार क़ानून का सही तरीक़े से क्रियान्वयन, पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों का विस्तार, विभिन्न वन निवासी समूहों का परीक्षण करके उन्हें अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित करना, भूमि अधिग्रहण का विरोध— ऐसे कुछ बुनियादी मुद्दे हैं, जिन पर इन दोनों संगठनों के दस्तावेज़ों या परचों में या इनके कार्यकर्त्ताओं और पदाधिकारियों की बातचीत में कई साझा पहलू सामने आते हैं। लेकिन दक्षिणपंथी और वामपंथी संगठनों के बीच मतभेद की भी कई दीवारें हैं। वामपंथी संगठन यह मानते हैं कि आश्रम जैसे संगठन आदिवासियों का हिंदूकरण के ज़रिये आदिवासी समाज को बाँट रहे हैं। दूसरी ओर आश्रम सभी वामपंथी संगठनों को अपना शत्रु और 'नक्सली' मानता है। यहाँ तक कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े कई संगठनों ने, जो व्यापक स्तर पर आश्रम से भी जुड़े हुए हैं, छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले में सलवा जुडूम जैसी हिंसक गोलबंदी का भी समर्थन किया था।[46] कई बार आश्रम के समर्थक यह भी आरोप लगाते हैं कि वामपंथी रुझान रखने वाले संगठन ईसाई मिशनरियों की मदद करते हैं।

वन संसाधनों पर आदिवासियों के दोनों के काम के तरीक़े में कुछ प्रमुख अंतरों को रेखांकित किया जा सकता है : पहला, इन दोनों के बीच सबसे प्रमुख अंतर यह है कि जहाँ आश्रम मुख्य रूप से शिक्षा और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा आदिवासी समूहों को ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से बचाने और हिंदू धर्म से जोड़ने को अपना सर्वप्रमुख काम मानता है, वहीं वन जन श्रमजीवी यूनियन मुख्य रूप से वन भूमि और वन संसाधनों पर आदिवासियों और अन्य वन निवासी समूहों के अधिकारों के प्रति पूरी तरह समर्पित है। दूसरा, वन संसाधनों पर आदिवासी और अन्य वन निवासी समूहों के अधिकारों के संदर्भ में आश्रम ने दस्तावेज़ तैयार करने, सरकारी महकमों पर ऊपर से दबाव डलवाने जैसे उपायों का ही सहारा लिया है। वहीं, वन जन श्रमजीवी संगठन ने आदिवासियों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक बनाया है। निश्चित रूप से, इन्हें कुछ स्थानों पर आदिवासियों को वन संसाधनों पर अधिकार दिलाने में कामयाबी मिली है, किंतु कई अन्य स्थानों पर ये अभी तक वन निवासी समुदायों को उनका वन संसाधनों पर उनका अधिकार दिलाने में सफल नहीं हुए हैं। लेकिन जिन क्षेत्रों में भी यह यूनियन काम कर रहा है, वहाँ के आदिवासी समूह अपने अधिकारों के प्रति ज़्यादा जागरूक हैं, और वे वन विभाग की मनमानी के ख़िलाफ़ लगातार संघर्ष कर रहे हैं।

IV

वर्चस्व का सहायक बनाम प्रतिरोध की आवाज़ : वनवासी कल्याण आश्रम और वन जन श्रमजीवी यूनियन

वनवासी कल्याण आश्रम और वन जन श्रमजीवी यूनियन नागरिक समाज के दायरे में सक्रिय दो प्रमुख संगठनों के रूप में सामने आते हैं।[47] इनके कार्यों और भूमिका का विश्लेषण करने के लिए मैं एंटोनियो ग्राम्शी के नागरिक समाज संगठन और बुद्धिजीवियों की भूमिका संबंधी विचारों का सहारा लेना चाहता

---

[46] देखें, नंदिनी सुंदर (2016).

[47] ग़ौरतलब है कि ग्राम्शी यूनियनवाद के विरोधी थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि इससे संकुचित सोच को बढ़ावा मिलता है और यूनियन के

हूँ।[48] *प्रिज़न नोटबुक्स*[49] में ग्राम्शी ने वर्चस्व की अपनी अवधारणा में नागरिक समाज के ऐसे संगठनों की परिकल्पना की है, जिसके माध्यम से पूँजीवादी राज्य अपना वर्चस्व क़ायम रखता है। ये संगठन सांस्कृतिक रूपकों का प्रयोग करके सहमति के एक वातावरण का निर्माण करते हैं। कई बार पूँजीपतियों के हित के लिए काम करने वाला राज्य इनकी कुछ माँगों को स्वीकार भी करता है, लेकिन मोटे तौर पर ये संगठन राज्य और पूँजीवादी व्यवस्था के लिए सहमति निर्माण का माध्यम बन जाते हैं।

ग्राम्शी ने बुद्धिजीवियों को काफ़ी विस्तृत अर्थ में परिभाषित किया है। उन्होंने बुद्धिजीवियों को दो भागों में बाँटा : पहला, आर्गेनिक या आंगिक बुद्धिजीवी और दूसरा इनऑर्गेनिक या पारम्परिक बुद्धिजीवी। आंगिक बुद्धिजीवी वे होते हैं जिनकी आवश्यकता हर उस वर्ग को होती है जो नयी समाज-व्यवस्था बनाना चाहता है। दूसरी ओर, पारम्परिक बुद्धिजीवी वे होते हैं जिनमें पहले के ऐतिहासिक दौर में जाने की परम्परा होती है। आंगिक बुद्धिजीवी वर्चस्वशाली विचार के ख़िलाफ़ प्रति-वर्चस्व के निर्माण का प्रयास करते हैं। वे शोषित वर्गों को उनकी वास्तविक स्थिति के बारे में जागरूक करते हैं, और अपनी बेहतरी के लिए नयी तरह की माँगों को रखने और उसके लिए गोलबंदी करने को प्रेरित करते हैं। पूँजीवादी राज्य उनकी ऐसी कुछ माँगों को स्वीकार भी करता है, ताकि उसका वर्चस्व क़ायम रहे।[50]

मैं यह तर्क देना चाहता हूँ कि आश्रम और इससे जुड़े बुद्धिजीवियों को पारम्परिक बुद्धिजीवी की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसे नागरिक समाज का एक ऐसा संगठन माना जा सकता है, जो भारतीय राज्य के पूँजीवादी हिंदुत्ववादी मॉडल के प्रति सहमति बनाने का काम करता है। दूसरी ओर, यह सच है कि ख़ुद ग्राम्शी ने यूनियन के काम को नकारात्मक तरीक़े से देखा, लेकिन हम वन जन श्रमजीवी यूनियन द्वारा प्रतिपादित विचारों से प्रेरित आदिवासी पुरुष और महिला कार्यकर्त्ताओं को ऐसे आंगिक बुद्धिजीवियों के श्रेणी में रख सकते हैं, जो ज़मीनी स्तर पर लगातार बदलाव के लिए काम करते हुए वन संसाधनों पर आदिवासियों के अधिकारों और उनके स्वायत्त जीवन के पक्ष में काम कर रहे हैं।

आश्रम नागरिक समाज के एक ऐसे संगठन के रूप में सामने आता है, जिसका मुख्य लक्ष्य हिंदू धर्म के मूल्यों के अनुसार आदिवासियों को ढालना है तथा उन्हें मुख्यधारा से जोड़ते हुए हिंदुत्ववादी राजनीति को मज़बूती प्रदान करता है। इसने अपने शिक्षा, चिकित्सा, महिला, श्रद्धा-जागरण और हितरक्षा के कामों की बदौलत आदिवासी समाज में अपनी एक पैठ बनाई है। इसने आदिवासियों के जीवन के विभिन्न आयामों पर ध्यान केंद्रित किया है, लेकिन मुख्य रूप से इसका ज़ोर आदिवासियों

सदस्य ख़ुद को व्यापक हितों से नहीं जोड़ पाते हैं. किंतु हम वन जन श्रमजीवी यूनियन को एक ऐसे संगठन के रूप में अवश्य देख सकते हैं जो आदिवासी समुदायों में पारम्परिक सोच को चुनौती देने का काम कर रहा है, और उनमें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की भावना भर रहा है.

[48] ग्राम्शी ने सबसे पहले 1926 में 'नोट्स ऑन द सदर्न क्वेश्चन' में वर्चस्व की अवधारणा का प्रयोग किया. यहाँ वे सर्वहारा के वर्चस्व के संदर्भ में बात करते हैं. उनके अनुसार, सर्वहारा उसी सीमा तक प्रभुत्वशाली वर्ग हो सकता है जिस सीमा तक इसे गठजोड़ों की ऐसी व्यवस्था बनाने में सफलता मिलती है जिसमें यह श्रमिक जनसंख्या के बहुमत को पूँजीवादी और बुर्ज़्वा राज्य के ख़िलाफ़ गोलबंद कर सके'. लेकिन बाद में *प्रिज़न नोटबुक्स* में वे इस शब्द का प्रयोग अधीनस्थ वर्गों पर शासक वर्ग के बौद्धिक और नैतिक नेतृत्व की दावेदारी के अर्थ में करते हैं. वे यह मानते हैं कि पूँजीवादी राज्य के वर्चस्व के क़ायम रहने के कारण ही इसके ख़िलाफ़ क्रांति नहीं होती. वे इस संदर्भ में नागरिक समाज और राजनीतिक समाज के बीच अंतर करते हैं. नागरिक समाज में ही सहमति निर्माण का काम होता है. इसमें परिवार, चर्च, स्कूल, विश्वविद्यालय, हितों को पूरा करने के लिए बने संगठन आदि आते हैं. वहीं राजनीतिक समाज राज्य के बल प्रयोग का संयंत्र होता है. ग्राम्शी का मूल तर्क यह है कि नागरिक समाज के संगठनों के माध्यम से पूँजीवादी राज्य के वर्चस्व को स्थापित किया जाता है. लेकिन यह एक जड़ या स्थिर स्थिति नहीं होती है. कई दफ़ा अपने वर्चस्व को क़ायम रखने के लिए पूँजीवादी राज्य नागरिक समाज के संगठनों के कई माँगों को स्वीकार करता है. ग्राम्शी इसी संदर्भ में आंगिक बुद्धिजीवी के विचार पर बल देते हैं. यह वह बुद्धिजीवी होता है जो शोषित वर्ग को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करता है, और उसके पक्ष में दलीलें प्रस्तुत करता है.

[49] इटली के तानाशाह मुसोलिनी की सरकार द्वारा ग्राम्शी को 1926 में गिरफ़्तार कर लिया गया था, उन पर मुक़दमा चला और उन्हें बीस वर्ष की सज़ा दी गयी. जेल में रहते हुए उन्होंने 29 नोटबुक्स में अपने विचार दर्ज किये. 1937 में उनकी मृत्यु हो गयी और इसके 1948 से 1951 के बीच उनकी नोटबुक्स को *प्रिज़न नोटबुक्स* के शीर्षक से छह खण्डों में प्रकाशित किया गया. देखें, मार्क्स. ई. ग्रीन (2011).

[50] ग्राम्शी के विचारों की समझ के लिए देखें, शांतल मूफ़ (1979); क्यू. होअरे और जी.एन. स्मिथ (1971).

(या वनवासियों) को मुख्यधारा की हिंदू संस्कृति से जोड़ने पर रहा है। यह आदिवासियों के बीच हिंदू मूल्यों को बढ़ावा देता है, वह उनके लिए एक स्तर तक शिक्षा, चिकित्सा आदि का बंदोबस्त करने की व्यवस्था करता है। इससे आदिवासियों के बीच भारतीय राज्य या मौजूदा व्यवस्था और आश्रम की विचारधारा के प्रति एक तरह की स्वीकार्यता निर्मित होती है। इसके कार्यों और भाजपा के अलावा कांग्रेस नेताओं से इसके संबंधों से यह बात आसानी से कही जा सकती है कि कभी भी किसी सरकार को यह संगठन 'चुनौती' या 'ख़तरा' नहीं लगा।

मैं यह तर्क देना चाहता हूँ कि यह संगठन आर्थिक स्तर पर किसी ऐसे 'रैडिकल' प्रस्ताव के लिए गोलबंदी या ज़बर्दस्त दबाव बनाने का काम नहीं करता है, जिससे राज्य की नवउदारतावादी (या बड़े पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने वाली) नीतियों को चुनौती मिले। इसका सीधे तौर पर पूँजीपति वर्गों के हितों से कोई टकराव नहीं है, और न ही इसने इस तरह का सीधा टकराव मोल लेने की जहमत उठाई है। भारतीय राज्य और पूँजीपति वर्ग (राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय निगमों) के लिए भी आश्रम की गतिविधि किसी समस्या का कारण नहीं बनी है। यह सच है कि इसने 2015 में प्रकाशित अपने दृष्टि-पत्र में, और कई मौक़ों पर अपने बयानों के माध्यम से, आदिवासियों को अधिकार देने वाले क़ानूनों के क्रियान्वयन की माँग की है। ये माँगें काफ़ी हद तक प्रगतिशील लगती हैं। लेकिन अचरज की बात यह है कि इस संगठन ने कभी भी इन माँगों को लागू करवाने के लिए आंदोलन का सहारा नहीं लिया। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि आश्रम ने भाजपा की राज्य सरकारों (छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, झारखण्ड) या केंद्र की मोदी सरकार को आदिवासियों के अधिकारों को उन्हें सुनिश्चित रूप से देने के लिए कभी मजबूर किया। अमूमन इसने अपने-आप को दस्तावेज़ तैयार करने, बयान जारी करने, प्रतिनिधि-मण्डल के साथ मंत्रियों से मिलने जैसे कार्यों तक ही सीमित रखा। भाजपा शासित राज्यों ने भी आदिवासियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ चलाईं, लेकिन उन्होंने उन्हें सुनिश्चित क़ानूनी अधिकार देने के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया। इसके विपरीत, आदिवासी क्षेत्रों में खनन आदि की विभिन्न परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जाता रहा। असल में, एक अर्थ में आश्रम ने प्रतिरोध की अन्य आवाज़ों को 'ख़तरनाक' बताने और उन्हें 'दबाने' में सरकार की मदद ही की है। मसलन, इसने सलवा जुडूम के माध्यम से आदिवासियों को उनके घरों से बेदख़ल करने का समर्थन किया, क्योंकि उसे यह लगता था कि इससे माओवाद का दमन होगा।[51] इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इस संगठन ने आदिवासियों के विस्थापन के ख़िलाफ़ या उनके हक़ के लिए ज़मीनी स्तर पर कभी कोई बड़ा आंदोलन किया हो।[52]

दूसरी ओर, वन जन श्रमजीवी यूनियन और इसके बैनर तले काम करने वाले विभिन्न स्थानीय घटकों ने आदिवासियों के बीच आंगिक बुद्धिजीवियों को तैयार करने और आगे बढ़ाने का काम किया है। इस संगठन से स्थानीय स्तर पर कई आदिवासी और वनों पर निर्भर दलित समूहों के पुरुष और महिलाएँ सामने आयी हैं, जिन्होंने रोज़-ब-रोज़ के व्यवहारों से वनों पर अपनी निर्भरता,

---

[51] नंदिनी सुंदर (2016 ख) कमल नयन चौबे (2018).

[52] वनवासी कल्याण आश्रम से जुड़े संघ के प्रचारक से जब मैंने यह प्रश्न किया कि क्या उनका संगठन वनवासियों (आदिवासियों) के अधिकारों के लिए आंदोलन करता है, तो उन्होंने जवाब दिया कि उनका आंदोलन में ज़्यादा विश्वास नहीं है. उनके अनुसार, अगर संवाद से समस्याएँ हल हो जाती है, तो आंदोलन की कोई आवश्यकता नहीं है. वनवासी कल्याण आश्रम के प्रचारक सुरेश कुलकर्णी से अनौपचारिक बातचीत, 22 अक्टूबर, 2019, स्थान : दिल्ली; हालाँकि कई बार वनवासी कल्याण आश्रम ख़ुद को राज्य से भी अलग दिखाने का प्रयास ज़रूर करता है, किंतु यह उससे किसी भी भी मुद्दे पर सीधा टकराव मोल लेने से भी बचता रहा है. अमूमन इसके द्वारा संघर्ष या जन-गोलबंदी की राजनीति की आलोचना की जाती रही है. वनवासी कल्याण आश्रम की मासिक पत्रिका *वन बंधु* में वामपंथी संगठनों द्वारा आदिवासियों को गोलबंद करके संघर्ष करने की रणनीति की आलोचना की गयी. इसमें प्रकाशित एक लेख में इस संगठन से जुड़े महेश काले ने यह विचार व्यक्त किया 'अपने हक़ के लिए संघर्ष करना, मोर्चा प्रदर्शन करना, रास्ता रोको करना, इसे अस्मिता जागरण नहीं कहते ...', देखें, महेश काले (2018 : 12).

वन विभाग और अन्य सरकारी विभागों की भूमिका और अपने समुदाय के लिए रणनीति के संदर्भ में गहरी समझ का विकास किया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि वन अधिकार क़ानून में 'अन्य पारम्परिक वन निवासियों' की श्रेणी को शामिल करने का विचार ऐसे ही संगठनों की ओर से सामने आया था। इस लिहाज़ से यूनियन और इसके घटक संगठनों ने हमेशा ही भारतीय राज्य से आदिवासी और अन्य वनाश्रित समूहों के पक्ष में नीति बनाने और उन्हें लागू करवाने के लिए संघर्ष किया है। आश्रम के विपरीत जन गोलबंदी और आंदोलन इनके काम का प्रमुख तरीक़ा है। इससे जुड़े नेताओं का यह मानना है कि ये अपने गोलबंदी से वन विभाग को झुका पाने में सफल हुए हैं। मिसाल के तौर पर, दुधवा नैशनल पार्क में अभी भी वन अधिकार क़ानून के तहत थारू जनजाति के लोगों को वन संसाधनों पर सामुदायिक अधिकार नहीं मिला है, किंतु ये लोग बड़ी संख्या में एकजुट होकर जंगल में जाते हैं और अपनी ज़रूरत की लकड़ी और अन्य वनोपज लेकर आते हैं। स्पष्टतः यूनियन ग्राम्शी की अवधारणा के तहत ऐसे ज़मीनी बुद्धिजीवियों और कार्यकर्त्ताओं का समूह माना जा सकता है, जो यथास्थिति को स्वीकार नहीं करते, बल्कि समाज में ऐसे परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं, जो हाशिये के समूहों के लिए फ़ायदेमंद हो।

V

निष्कर्ष

वनवासी कल्याण आश्रम द्वारा भारत की जनजातियों हेतु एक दृष्टि-पत्र पर विचार करने से यह बात स्पष्ट होती है कि पेसा और वन अधिकार क़ानून जैसे प्रगतिशील क़ानूनों को आदिवासी क्षेत्रों में सही तरीक़े से लागू करने के बारे में इनके विचार ग़ैर-माओवादी वामपंथी धड़े से काफ़ी मिलते-जुलते हैं। मतभेदों के बिंदु भी हैं। मसलन, जहाँ आदिवासियों पर ईसाई धर्म का प्रभाव आश्रम के लिए चिंता का बहुत बड़ा विषय है, वहीं आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत वामपंथी संगठन इसे गम्भीर मुद्दा नहीं मानते हैं, बल्कि वे आश्रम द्वारा आदिवासियों के हिंदूकरण का विरोध करते हैं। इसी प्रकार, जहाँ वाम धड़े से जुड़े संगठन माओवादी हिंसा और राज्य प्रायोजित हिंसा दोनों का तीखा विरोध करते हैं, वहीं आश्रम माओवादियों की हिंसा की तो तीखी आलोचना करता है किंतु राज्य की हिंसा के हर रूप को जायज़ मानता है। इस संदर्भ में सलवा जुडूम के मामले में संघ से जुड़े संगठनों की समर्थक भूमिका का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

निश्चित रूप से, आश्रम का नीति दृष्टि-पत्र आदिवासियों के अधिकारों के संदर्भ में इसके ज़्यादा प्रगतिशील आयाम को सामने लाता है। आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले विविध संगठन भी इसी प्रकार की माँग करते रहे हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले विभिन्न संगठनों के बीच आपसी सहयोग का एक साझा आधार मौजूद है। लेकिन आश्रम ने कभी वन अधिकार के मसले में व्यवस्थित संघर्ष करने, या भाजपा सरकारों पर गहरा दबाव डालने का काम नहीं किया है। असल में, वन संसाधनों पर अधिकार के बारे में आदिवासी समूहों की जागरूकता ने ही इसे इन मसलों पर कुछ प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने के लिए मजबूर किया है। यह इसकी प्राथमिकता नहीं है, बल्कि इसके काम के विभिन्न आयामों में से एक आयाम है। यह मुख्य रूप से आदिवासियों के बीच हिंदू धर्म के मूल्यों के प्रसार या आदिवासियों के प्रतीकों के हिंदूकरण पर ज़्यादा ध्यान केंद्रित करता है। इसी संदर्भ में वाम रुझान रखने वाले वन जन श्रमजीवी यूनियन जैसे संगठन ज़्यादा प्रगतिशील संगठन के रूप में सामने आते हैं, क्योंकि ये आदिवासियों के बीच आलोचनात्मक चिंतन, यथास्थितिवाद को प्रश्नांकित करने की प्रवृत्ति और अपने हक़ लिए गोलबंद करने संघर्ष करने की भावना का संचार करते हैं।

संदर्भ

अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम (2015), *भारत की जनजातियों हेतु एक नीति दृष्टिपत्र,* रमाभाउ म्हालगी, मुम्बई.

---------------------------(2019), *रेज़ोल्यूशन पास्ड बाई सेंट्रल एक्जिक्यूटिव मीटिंग,* सतना.

अजय दाण्डेकर और चित्रांगदा चौधरी (2010), *पेसा, लेफ़्ट विंग एक्सट्रीमिज़म ऐंड गवर्नेंस : कंसर्स ऐंड चैलेंजेज़ इन इंडियाज़ ट्राइबल डिस्ट्रिक्ट्स,* आईआरएमए, आणंद.

मार्कस. ई. ग्रीन (2011), *रिथिंकिंग ग्राम्शी,* रौटलेज, लंदन.

कमल नयन चौबे (2013 क), 'जंगल का संघर्ष, 'प्रगतिशील' क़ानून और राज्य', सामयिक प्रकाशन, समाज और इतिहास, नवीन शृंखला 3, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, दिल्ली.

---------- (2013 ख), 'दो प्रगतिशील क़ानूनों की दास्तान : राज्य, जन-आंदोलन और प्रतिरोध', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति,* खण्ड 1(1).

---------- (2014), *लॉ ऐज़ साइट ऑफ़ कॉन्टेस्टेशन बिटवीन स्टेट ऐंड द मार्जिन : अ कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ़ द एक्सपीरियंस ऑफ़ टू 'प्रोग्रेसिव' लॉज़ (पेसा ऐंड एफआरए),* नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम ऐंड लाइब्रेरी में संगृहीत अप्रकाशित पोस्ट-डॉक्टोरल शोध-प्रबंध, तीन मूर्ति हाउस, नयी दिल्ली.

---------- (2015क), 'द पब्लिक लाइफ़ ऑफ़ अ 'प्रोग्रेसिव' लॉ : पेसा ऐंड गाँव गणराज्य (विलेज रिपब्लिक)', *स्टडीज़ इन इंडियन पॉलिटिक्स,* खण्ड 3, नम्बर 3.

---------- (2015 ख), 'एनहैंसिंग पेस : द अनफ़िनिश्ड एजेंडा', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* 50 (8).

---------- (2015 ग), *जंगल की हक़दारी : राजनीति और संघर्ष,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

---------- (2018), 'सलवा जुडूम : राज्य, माओवाद और हिंसा की अंतहीन दास्तान', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति,* वर्ष 6, अंक 12.

के.डी. सप्रे (1999), *श्री बालासाहेब देशपाण्डे : जीवन और कार्य,* वन साहित्य अकादमी, जबलपुर.

क्रिस्टॉफ़ जेफ्रेलॉ (1996), *द हिंदू नैशनलिस्ट मूवमेंट ऐंड इंडियन पॉलिटिक्स,* वाइकिंग, नयी दिल्ली.

क्यू. होअरे और जी.एन. स्मिथ (सं.) (1971), *सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिज़न नोटबुक्स ऑफ़ एंटोनियो ग्राम्शी,* लॉरेंस ऐंड विशार्ट, लंदन.

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (1996), *द प्रोविज़ंस ऑफ़ पंचायत्ज़ (एक्सटेंशन टू द शेड्यूल्ड एरिया) एक्ट,* 1996, नम्बर 40 ऑफ़ 1996.

-------------- (2007), शेड्यूल्ड ट्राइब्स ऐंड अदर ट्रेडिशनल फ़ॉरेस्ट ड्वेलर्स (रिकॉग्निशन ऑफ़ फ़ॉरेस्ट राइट्स) एक्ट, 2006, मिनिस्ट्री ऑफ़ लॉ ऐंड जस्टिस, जनवरी.

गवर्नमेंट ऑफ़ मध्य प्रदेश, (1956 क), *रिपोर्ट ऑफ़ द क्रिश्चियन मिशनरी इंक्वायरी कमिटी,* मध्य प्रदेश, खण्ड I, गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, नागपुर.

-----------------(1956 ख), *रिपोर्ट ऑफ़ द क्रिश्चियन मिशनरी इंक्वायरी कमिटी, मध्य प्रदेश,* वॉल्यूम II, गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, नागपुर.

डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा (2004), *द लिटिल लाइट्स इन टिनी मड-पॉट्स डिफ़ाई 50 इयर्स ऑफ़ एंटी 'पंचायत' राज,* सहयोग पुस्तक कुटीर ट्रस्ट, नयी दिल्ली. (प्रथम प्रकाशन 1998).

----------(2005), *आदिवासी क्षेत्र किस ओर? : संवैधानिक संशोधन भूरिया समिति रिपोर्ट और उसके आगे,* सहयोग पुस्तक कुटीर ट्रस्ट, नयी दिल्ली.

भारत का संविधान (2008), द्विभाषी संस्करण, चौथा संस्करण, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद.

महेश काले (2018), 'अस्मिता जागरण ... 'उनका' और 'हमारा', *वन बंधु,* वर्ष 42, अंक 12.

नंदिनी सुंदर (2009), 'लॉ, पॉलिसीज़ ऐंड प्रैक्टिसेज इन झारखण्ड', नंदिनी सुंदर (सं.), *लीगल ग्राउंड्स : नेचुरल रिसोर्सेज़, आइडेंटिटी ऐंड द लॉ इन झारखण्ड,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

------- (2016 क), 'आदिवासी वर्सेज़ वनवासी : द पॉलिटिक्स ऑफ़ कनवर्जन इन सेंट्रल इंडिया', *द शेड्यूल्ड ट्राइब्ज़ ऐंड देयर इंडिया : पॉलिटिक्स, आइडेंटिटीज़, पॉलिसीज़ ऐंड वर्क,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली .

------- (2016 ख), द *बर्निंग फ़ॉरेस्ट : इंडियाज़ वार इन बस्तर,* जगरनॉट, नयी दिल्ली.

निवाधा राणा (2019), *वॉक अहेड विद द संगठन,* वुमॅन इन रेजिस्टेंस, द *रिसर्च कलेक्टिव,* नयी दिल्ली.

प्रसन्न दामोदरन सप्रे (1991), *हमारे वनवासी और कल्याण आश्रम,* लोकहित प्रकाशन, लखनऊ.

बालासाहेब देशपाण्डे (1990), *संस्था, शासन और कार्यकर्त्ता,* एबीवीकेए, दिल्ली.

अभय खाखा (2018), 'आदिवासी भारत : परिकल्पना, राजनीति, मुद्दे और चिंताएँ , नंदिनी सुंदर, सव्यसाची, नरेंद्र बस्तर, अभय खाखा, कमल नयन चौबे', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति,* वर्ष 6, अंक 12.

मधु सरीन (2014), 'अनडुईंग हिस्टॉरिकल इनजस्टिस : रिक्लेमिंग सिटीज़नशिप राइट्स ऐंड डेमोक्रैटिक फ़ॉरेस्ट गवर्नेंस थ्रू द फ़ॉरेस्ट राइट्स एक्ट', शराचंद्र लेले और अजीत मेनन (सं.), *डेमॉक्रैटाइज़िंग फ़ॉरेस्ट गवर्नेंस इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

लक्ष्मण टोपले (2011), *हाँ! हम हिंदू हैं ,* (अनु.) : प्रसन्न दामोदर सप्रे, सुरुचि प्रकाशन, नयी दिल्ली.

वॉल्टर के. एंडरसन और श्रीधर डी. दामले (2018), द *आरएसएस : अ व्यू टू द इनसाइड, पेंग्विन-वाइकिंग,* नयी दिल्ली.

शांतल मूफ़ (1979), *ग्राम्शी ऐंड मार्क्सिस्ट थियरी,* रौटलेज ऐंड कीगन पॉल, लंदन

सागर तिवारी (2017), 'कष्ट-निवारक ठक्कर बापा : समाज सेवा को समर्पित जीवन पर एक विहंगम दृष्टि', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति,* वर्ष 5, अंक 10.

सुकालो गोंड (2019), *हमारी ज़मीन हमारा हक़, प्रतिरोध में महिलाएँ,* द रिसर्च कलेक्टिव, नयी दिल्ली.

सूर्य नारायण सक्सेना (1993), *फ़्रेंड्स ऑर फ़ोज ऑफ़ आदिवासीज़ ऐंड दलित्ज़,* पब्लिसिटी ऐंड पब्लिकेशन डिविजन, एबीवीकेए, नयी दिल्ली.

------------- (1994), *वनवासी कल्याण आश्रम : क्या और क्यों ?,* एबीवीकेए, दिल्ली.

--------------(2004), *वाइड विंग्स ऑफ़ वनवासी कल्याण आश्रम : अ टेल ऑफ़ सर्विस ऐंड स्ट्रगल,* सुरुचि प्रकाशन, दिल्ली.

स्नेहलता वैद (2011), *वनवासी कल्याण आश्रम : कार्य परिचय,* अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम, जशपुर नगर.